विदेशों में शिवलिङ्ग-पूजा

महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वरपुरी
उपाध्यक्ष
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

भारतीयों में अनादिकाल से अब तक शिवलिङ्ग-पूजा चली आती है, यह तो प्रत्यक्ष ही है। विदेशों की लिङ्ग-पूजा के सम्बन्ध में कुछ विवाद दीख पड़ता है, इस कारण उसी के विषय में कुछ विचार करना इस लेखका उद्देश्य है। हाँ, तद्विषयक चर्चा के पूर्व पूर्व-पीठिका के रूप में अपने देश की लिङ्ग- पूजा के सम्बन्ध में भी दो-चार शब्द लिख देना आवश्यक है।

ऐसा जान पड़ता है कि भगवान् शिव की पूजा और भक्ति अखिल जगत्में व्याप्त रही है। इस अत्युज्ज्वल शिव-भक्ति का भूमण्डल में सर्वप्रथम प्रचार करने वाले श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्य ही हैं। ये महानुभाव पूज्यचरण श्रीशिवजी की आज्ञा से ही दिव्य देह धारणकर शिवभक्ति-स्थापन के लिये इस भूतल पर अवतरित और समस्त दिशाओं में विचरण करते हुए नास्तिक-मतों का खण्डन कर 'शिव ही सर्वोत्तम हैं, शिव से बढ़कर कोई नहीं है, यह अपार संसार शिवजी से ही उत्पन्न हुआ है, अतः प्रत्येक व्यक्ति को उस परमशिव की ध्यान- धारणा में आसक्त होकर कैवल्य सुख का अनुभव करना चाहिये'—इस उपदेश के द्वारा लोगों के हृदयक्षेत्र में शिव- भक्तिका बीज बो गये। इन्हीं महान् पुरुषों की कृपा से अब तक शिव-भक्ति चली आयी है। शिव-भक्ति के प्रचारक आचार्यो में प्रमुख ये ही आचार्य हुए हैं। इनके समय में जहाँ देखो वहीं शिव-लिङ्गों की स्थापन, शिव-पूजा का वैभव, शिव- मन्त्र का प्रभाव और शिव-भक्ति का जय-जयकार होता नजर आता था। भारत के किसी भी गाँव और खेड़े में जितनी संख्या शिवालयों की मिलेगी उतनी और किसी देवालय की नहीं। गिरि-शिखरों, कन्दराओं, नदियों तथा वन्य प्रदेशों में जहाँ देखो वहाँ शिव-स्थान भरे पड़े हैं। काशी, रामेश्वर, श्रीशैल, केदार आदि महाक्षेत्रों में द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों का वैभव अब तक बहुत कुछ देखने में आता है। क्यों न हो, जब कि हमारे ये आचार्यचरण प्राणिमात्र के हृदय में -

धिग्भस्मरहितं फालं धिग्ग्राममशिवालयम्।

इस दिव्यवाणी को अमर बना गये हैं। पाश्चात्य देशों में कई प्राचीन शिवालयों के होने का पता लगा है, जिससे अनुमान होता है कि ईसाई मत के प्रचार के पूर्व उन देशों में भी शिव-स्थान निर्माण किये जाते रहे होंगे। किसी-किसी को इस बात से आश्चर्य हो सकता है, परंतु आश्चर्य का कारण नहीं है। कारण, जिन शिवने नव खण्डों को जन्म दिया है, उनका सम्बन्ध उन समस्त खण्डों के साथ होना बिलकुल स्वाभाविक है।

काशी के परम शिव-भक्त कैलासवासी बाबू श्रीबेचूसिंह जी शाम्भव ने अपने 'शिवनिर्माल्यरत्नाकर' नामक ग्रन्थ की प्रस्तावना में फ्रेंचदेशीय लुइस् साहब के ग्रन्थ के आधार पर विदेशों में शिवलिङ्गों के होने का उल्लेख किया है वे लिखते हैं कि उत्तर- अफ्रिका खण्ड के 'इजिप्ट' प्रान्तमें, 'मेफिस' नामक और 'अशीरिस' नामक क्षेत्रों में नन्दीपर विराजमान, त्रिशूलहस्त एवं व्याघ्रचर्माम्बरधारी शिवकी अनेक मूर्तियाँ हैं, जिनका वहाँ के लोग बेलपत्र से पूजन और दूध से अभिषेक करते हैं। तुर्किस्तान के 'बाबीलन' नगर में एक हजार दो सौ फुट का एक महालिङ्ग है। पृथिवीभर में इतना बड़ा शिवलिङ्ग और कहीं नहीं देखने में आया। इसी प्रकार 'हेड्रॉपोलिस' नगर में एक विशाल शिवालय है, जिसमें तीन सौ फुट का शिवलिङ्ग है। मुसल्मानों के तीर्थ मक्काशरीफमें भी 'मक्केश्वर' नामक शिवलिङ्ग का होना शिवलीला ही कहनी पड़ेगी। वहाँ के 'जमजम्' नामक कुएँ में भी एक शिवलिङ्ग है जिसकी पूजा खजूर की पत्तियों से होती है। अमेरिका खण्ड के ब्रेजिल-देश में बहुत-से शिवलिङ्ग मिलेंगे जो अत्यन्त प्राचीन है।

यूरोप के 'कारिन्थ' नगर में तो पार्वती-मन्दिर भी पाया जाता है। इटली के कितने ही ईसाई लोग अब तक शिवलिङ्गों की पूजा करते आये हैं। स्कॉटलैंड (ग्लासगो) में एक सुवर्णाच्छादित शिवलिङ्ग है, जिसकी पूजा वहाँ के लोग बड़ी भक्तिसे करते हैं। 'फीजियन' के 'एटिस' या 'निनिवा' नगरमें 'एषीर' नामक शिवलिङ्ग है। यहूदियों के देश में भी शिवलिङ्ग बहुत हैं, इसी प्रकार अफरीदिस्तान, चित्राल, काबुल, बलख-बुखारा आदि स्थलों में बहुत-से शिवलिङ्ग हैं, जिन्हें वहाँ के लोग 'पञ्चशेर' और 'पञ्चवीर' नामों से पुकारते हैं। अस्तु !

अब हम 'अनाम' देश के शिवालयों के विषय में कुछ विस्तृत विवेचन करेंगे। फ्रेंच-राज्याधीन अनाम देश में अनेक शिव मन्दिर मिलते हैं। यह अनाम इण्डोचाइना में है। इसे प्राचीन काल में 'चम्पा' कहते थे। सुप्रसिद्ध फ्रेंच - शोधकर्ता मि० ए० बर्गेनद्वारा शिवालयों के शिलालेख के सम्बन्ध में लिखित एक बृहदाकार पुस्तक तथा श्री आर० सी० मजूमदार के 'Anceint Indian Colonies in the Far East' (सुदूर पूर्व के प्राचीन भारतीय उपनिवेश) आदि ग्रन्थों से यह पता चलता है कि यहाँ के संस्कृत-शिलालेखोंमें से बानबे लेख शिव-विषयक, तीन विष्णुविषयक, पाँच ब्रह्मा-विषयक, दो शिव और विष्णुविषयक और सात लेख बुद्धविषयक हैं। इन सब लेखों के चित्र उक्त ग्रन्थकर्ताओं की

बदौलत हमारी दृष्टि के सामने आये हैं। इनकी संस्कृतशैली बड़ी सुन्दर है। शिवविषयक अनेक लेखों के आरम्भ में 'ॐ नमः शिवाय' महामन्त्र खुदा हुआ है और तत्पश्चात् वहाँ के राजा और शिवलिङ्गों की गद्य-पद्यों में प्रशंसा है। उस देश के सभी प्राचीन राजा शिवभक्त ही थे और यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि भारत के वीरशैवों में भी वैसे 'शिवभक्तशिखामणि' आजकल देखने में नहीं आते। किसी काल में उस देश का 'मीसोन खेड़ा' इस सम्बन्ध में काशी की समानता कर सकता था। वहाँ के सुन्दर शिव मन्दिर तथा उनके विशाल शिलालेख इस बात की साक्षी देते हैं कि शिवभक्ति की इतनी उन्नति भारतवर्ष में शायद ही कभी हुई हो'।

'मीसोन' ग्रामके चौथे शिलालेख में लिखा है कि भद्रवर्मा नामक महाराजाने 'भद्रेश्वर' शिवलिङ्गकी स्थापना की और उसके भोग-राग के लिये महापर्वत और महानदियों के बीच के 'सुलह' और 'कुचक' नामक स्थल भेंट में चढ़ाये। यह लेख ई० स० की पाँचवीं शताब्दी का है। सातवें शिलालेख से पता चलता है कि कालान्तर में 'भद्रेश्वर' का मन्दिर नष्ट हो जानेपर किसी रुद्रवर्मा के पुत्र शम्भुभद्रवर्मा नामक राजाने 'शम्भु- भद्रेश्वर' महादेव की स्थापना की। उक्त शिवलिङ्ग का कुछ वर्णन नीचे दिया जाता है-

सृष्टं येन त्रितयमखिलं भुर्भुवः स्वः स्वशक्त्या
योत्खातंभुवनदुरितं वह्निनेवान्धकारम्।
यस्याचिन्त्यो जगति महिमा यस्य नादिर्न चान्त-
श्चम्पादेशे जनयतु सुखं शम्भुभद्रेश्वरोऽयम्॥

कितना भक्तिभावपूर्ण श्लोक है ! इसी से यह भी ज्ञात होता है कि उक्त 'मीसोन' ग्राम के प्रदेश का प्राचीन नाम 'चम्पा' है। इस राजा के बाद पट्टाभिषिक्त क्रमशः महाराजा प्रकाशधर्म और इन्द्रवर्मा तथा कुछ अन्य राजाओं ने इस 'शम्भुभद्रेश्वर' महादेव के प्रति असाधारण भक्ति के प्रमाणस्वरूप उन पर केवल अनेक बहुमूल्य रत्न ही नहीं चढ़ाये, बल्कि अपना 'भक्त' नाम अमर रखने के लिये अनेक शिलालेख भी खुदवाये। उन शिलालेखों में अङ्कित शिवस्तुतियों का कुछ अंश नमूने के तौर पर नीचे दिया जाता है—

१६ वें लेख में—

यं सर्वदेवाः ससुरेशमुख्या ध्यायन्ति तत्तत्त्वविदश्च सन्तः।
स्वस्थः सुशुद्धः परमो वरेण्यो ईशाननाथः स जयत्यजत्रम्॥

स्मृतिरपि यस्य सकृदपि प्रणिपतितान् तारयत्यपायेभ्यः ।
स श्रीभद्रेश्वरोऽस्तु प्रजाहितार्थं तथा प्रभासेशः ॥

१७ वें लेख में-

ऐश्वर्यातिशयप्रदो मखभुजां यस्तप्यमानस्तपः कन्दर्पोत्तमविग्रहप्रदहनो हेमाद्रिजायाः पतिः ।
लोकानां परमेश्वरत्वमसमं यातोऽनडुद्वाहनो याथातथ्यविशारदास्तु जगतामीशस्य नो सन्ति हि ॥

इच्छातीतवरप्रदानवशिनं भक्त्या समाराध्य यं त्रैलोक्यप्रभवप्रभावमहता वृत्रस्य हन्त्रा विना ।
भुङ्क्तेऽद्याप्युपमन्युरिन्दुधवलं क्षीरार्णवं बान्धवैः श्रीशानेश्वरनाथ एष भगवान् पायादपायात् स वः ॥

इसी प्रकार वहाँ के महाराजाओं ने 'श्रीशानभद्रेश्वर' का अनेक लेखों में बखान कर अपनी परमशिवभक्ति का परिचय दिया है। उस शिवलिङ्गमूर्ति की सेवा का खर्च चलाने के लिये एक कोश की स्थापना की थी, जिसका पता १६ वें लेख से लगता है—

श्रीशानेश्वरकोशं संस्थाप्य यथाविधि स्वभक्तिवशात् ।
श्रीमान् प्रकाशधर्मो मुकुटं भद्रेश्वरायादात् ॥

यह लेख ई० स० ६८७ का है। इतने प्राचीन काल में भी 'बैंक' (कोश) की स्थापना करके महादेव के भोग-रागका प्रबन्ध राजा ने किया, नहीं तो महादेव के 'मुकुट' आदि आभरण नित्य-नये कैसे बनते ? यहाँ 'कोश' शब्दका अर्थ कुछ लोगों ने 'कवच' किया है। एक और परमभक्त नरवाहनवर्मा ने शिवलिङ्ग की वेदी को सोने से बनवाया था। यह बात २१ वें लेख से जो ई० स० ७३० का है, प्रकट होती है-

नरवाहनवर्मश्रीरकरोत् तां शिलामयीम् ।
रुक्मरौप्यबहिर्बद्धां ब्रह्मा मेरुशिखामिव ॥

स्वर्णरौप्यमयी लक्ष्मीं बिभ्रती वेदिका पुनः ।
विद्युत् भाति शिखा हिमगिरेरिव ॥

ई० स० ८३५ के ३१ वें लेखमें शम्भुभद्रेश्वर-लिङ्ग के विषय में यह इतिहास भी लिखा है कि इस लिङ्गमूर्तिको शिवजीने आदिकालमें भृगुको दिया था, जिसे आगे चलकर भृगु ने 'उरोज' नामक महाराजा को दिया। इस राजा ने इस लिङ्ग की चम्पा नगरी में स्थापना की। इन महादेव का नाम उरोज महाराज ने 'श्रीशानभद्रेश्वर' रखा था। आजकल यह

लिङ्ग 'वुवन्' नामक पर्वतपर स्थापित है। तत्सम्बन्धी लेख के कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं-

श्रीशान भद्रेश्वरमन्दिरार्कं परैः पुरोरोजकृतं विशीर्णम् ।
पुनर्भवोऽहं स विनाशकांस्तान् हत्वा रणे तस्य पुनः प्रचक्रे ॥

श्रीमाञ्च्छ्रीशान भद्रेश्वरममितमुदं स्थापयित्वा ह्युरोजो
नाकौकःस्थापनस्याक्षयमुत स वुवन्भूधरस्याङ्कमूर्धम् ।

कृत्वा चास्तं गतोऽभूत् पुनरहमपरो भावयित्वा विनष्टं
स्थानं देवस्य तस्याभिमतरुचि वुवन्स्थापितेशः पुरेष्ट्या ॥

'उरोज' महाराज के बाद उन के वंशधरों ने भी इन महादेव के वैभव को अक्षुण्ण रखा। इस मन्दिर की अतुल सम्पत्ति को कम्बोडिया देश के लोगों ने अपहरण कर लेने का बारम्बार प्रयत्न किया, परंतु सफल नहीं हुए। प्रत्युत चम्पाधिपति उन्हें हराकर कम्बोडिया से बहुत-सा धन भी लूट लाये और उससे उन्होंने अपने इस प्रसिद्ध मन्दिर का जीर्णोद्धार किया । जयेन्द्रवर्मा महाराज ने ई० स० १०८८ में इन महादेव के लिये अमूल्य रत्नजटित एक स्वर्णकवच समर्पित किया था, जिसमें षण्मुखसहित एक सर्पाकृति बनी हुई थी। कुछ प्रामाणिक कागज पत्रों से यह भी पता लगा है कि यह कवच तौल में १७२० तोले था। अस्सी वर्ष के बाद इसी 'जयेन्द्रवर्मा' नामक राजा ने अत्यन्त भक्ति के साथ अनेक स्वर्ण निर्मित आभरण और पूजा का सामान पुनः समर्पित किया। इस मन्दिर का शिखर बनवाने में तीन हजार तोले (७५ पौण्ड) सोना लगा था। इतना ही नहीं, मन्दिर की सब दीवारें आदि भी चौदह लाख तोले चाँदी (३५०० पौण्ड) से बनवायी थीं।

यह सब विवरण 'म्यास्परो' नामक फ्रेंच विद्वान् की पुस्तक से मालूम हुआ है। इसी प्रकार उस देशके राजाओं ने मन्दिर और महादेव के लिये सुवर्ण, रजत, रत्न और गायक, सेवक, नर्तक - नर्तकियों की भी बहुत बड़ी संख्या का प्रबन्ध किया था। २३ और २४वें लेखों में लिखा है-

' अथ तस्य तदापि राज्ञेन्द्रवर्मणा पुनः स्थापित- मेव सकलकोशकोष्ठागाररजतसुवर्णमुकुटरत्नहारादिपरि- भोगसान्तःपुरविलासिनीदासदासीगोमहिष क्षेत्रादिद्रव्यं तस्मै तेन दत्तं चित्तप्रसादेन' – 'तस्मै भगवते सकललोकहित- कारणाय श्रीन्द्रभद्रेश्वरायेदमिति स भगवान् श्रीमानिन्द्रवर्मा 'जञ्' कोष्ठागारं शिवयज्ञक्षेत्रद्वयं शिखिशिखागिरिप्रदेशं भक्त्या शुद्धेन मनसैव दत्तवानिति।

इन्द्रभद्रेश्वरश्चैव सर्वद्रव्यं महीतले ।
ये रक्षन्ति रमन्त्येते स्वर्गे सुरगणैः सदा ॥

ये हरन्ति पतन्त्येते नरके वा कुलैः सह ।
यावत्सूर्योऽस्ति चन्द्रश्च तावन्नरकदुःखिताः ॥

लुब्धेन मनसा द्रव्यं यो हरेत् परमेश्वरात् ।
नरकान्न पुनर्गच्छेत् न चिरं तु स जीवति ॥

यहाँ 'जञ्' का अर्थ है धान्यगृह। इसमें पापी चोरों के लिये फटकार तो है ही, साथ ही मुक्तिमार्ग के पथिकों के लिये अमूल्य उपदेश भी है। कैसी उच्च कोटि की भक्ति है ! धन्य हैं वे जो भगवान् को अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं।

चम्पादेश (अनाम) के शिवलिङ्गों के अंदर इस 'भद्रेश्वर' का एक मुख्य स्थान होने पर भी वहाँ इससे भी अधिक प्राचीन शिवलिङ्ग विराजमान है। 'एक मुखलिङ्ग के महादेव अति प्राचीन हैं।

इस प्रकार अनाम- देश के राजा कट्टर शिव-भक्त थे, ऐसा जान पड़ता है। शिवलिङ्ग प्रतिष्ठापन और शिव-सेवा को वे अपना मुख्य कर्तव्य मानते थे। उनकी कीर्ति शिव- मन्दिरों से, उनका परमधर्म शिवालयों की रक्षा से, उनका अपार धन शिव के अर्पण से, उनका क्षत्रिय धर्म शिव-द्वेषियों के साथ युद्ध से, जिह्वा शिवनामोच्चारणसे, हाथ पूजा से, नेत्र दर्शन से, पैर तीर्थ-यात्रा से, देह प्रसाद-सेवन से और आत्मा शिव- ध्यान से पवित्र और सफल हो गये थे।

चम्पा देश के राजाओं में शिव-भक्ति के साथ-साथ अपने नाम को भी बनाये रखने की प्रवृत्ति थी। वे प्रायः अपने नाम से ही 'लिङ्ग' की स्थापना करते थे। उदाहरणार्थ-

लिङ्ग के नाम	**संस्थापक**	**राजाओं के नाम**
भद्रेश्वर	भद्रवर्मा	महाराज
शम्भुभद्रेश्वर	शम्भुभद्रवर्मा	महाराज
इन्द्रभद्रेश्वर	इन्द्रवर्मा	महाराज
इन्द्रभोगेश्वर	इन्द्रवर्मा	महाराज
इन्द्रपरमेश्वर	इन्द्रवर्मा	महाराज
विक्रान्तरुद्र	विक्रान्तवर्मा	महाराज

विक्रान्तरुद्रेश्वर	विक्रान्तवर्मा	महाराज
विक्रान्तदेवाधिभवेश्वर	विक्रान्तवर्मा	महाराज
जयगुहेश्वर	जयसिंहवर्मदेव	महाराज
प्रकाशभद्रेश्वर	भद्रवर्मदेव	महाराज
इन्द्रकान्तेश्वर	इन्द्रवर्मा	महाराज
हरिवर्मेश्वर	हरिवर्मा	महाराज
जयहरिलिङ्गेश्वर	जयहरिवर्मा	महाराज
जयेन्द्रलोकेश्वर	जयेन्द्रवर्मा	महाराज
जयेन्द्रेश्वर	जयेन्द्रवर्मा	महाराज
इन्द्रवर्मलिङ्गेश्वर	इन्द्रवर्मा	महाराज
जयसिंहवर्मलिङ्गेश्वर	जयसिंहवर्मदेव	महाराज

ये सब बातें २, ७, २३, २४, ३०, ३९, ७४, ७५, ८१, १०८, ११२, ११६वें लेखों में विस्तार से लिखी गयी हैं। इसके अतिरिक्त ४३, ३२, ३५, ३९, ४९वें लेखों से भी देवलिङ्गेश्वर, महालिङ्गेश्वर, शिवलिङ्गेश्वर, महाशिव-लिङ्गेश्वर, धर्मलिङ्गेश्वर आदि लिङ्गों की स्थापना मालूम हो रही है। जैसे कि भारतवर्ष में भी अगस्त्येश्वर, गौतमेश्वर, कपिलेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, व्यासेश्वर, कश्यपेश्वर, रामेश्वर, पृथ्वीदेवेश्वर, लोकेश्वर, त्रैलोक्येश्वर इत्यादि नामके जो लिङ्ग प्रसिद्ध हुए हैं वे सब-के-सब उन-उन नाम वाले महर्षि- महापुरुषोंके ही स्थापित किये हुए हैं।

चम्पा देश के इतिहास को देखने से यह पता चलता है कि वह देश प्राचीन काल में शिवलिङ्गमय था। वहाँ की कई मूर्तियों से ऐसा भी प्रतीत होता है कि वहाँ के लोग शिवजीकी पूजा लिङ्गाकार और मनुष्याकार में भी करते थे। अधिक संख्या लिङ्गाकारों की ही है। वहाँके लिङ्गपीठ चौकोर और गोल हैं।

बाण (लिङ्ग) भी बहुत सुन्दर हैं। कुछ देवालयों में सात-सात लिङ्ग तक स्थापित किये गये हैं। कुछ राजा लोग अपने चेहरे की आकृति के भी लिङ्गों के मुख बनवाकर 'मुखलिङ्ग" नाम से स्थापित करते थे, यह बात भी शिलालेखों से मालूम होती है। 'ट्राक्य' ग्राम में शिवजी की एक मनुष्याकार मूर्ति मिली है। यह सर्पावेष्टित और जटाजूटधारी खड़े हुए शिवकी है। इसके हाथ-पैरों में कहीं-कहीं चोट लगी है। 'मीसोन' ग्राम में भी इस तरह की एक मूर्ति के हाथों में रुद्राक्षमाला एवं अमृतपात्र हैं। सिपर सुन्दर जटा और ललाटमें अग्नि-नेत्र है। 'यानमुम' ग्राम में एक मूर्ति त्रिनेत्र और त्रिशूलपाणि बैठे

हुए शिव की है। 'ड्रानलाय' ग्राममें नन्दीवाहनमूर्ति विराजती है। कुछ जगहों में ताण्डवेश्वर मूर्तियाँ भी देखी गयी हैं। कुछ मूर्तियों के २, ४, ६, १०, २४, २८ तक हाथ दिखायी पड़ते हैं। अपने देश की भाँति वहाँ भी प्रत्येक शिवमन्दिर के सामने नन्दी स्थापित है। नन्दी की पीठ बहुत सुन्दर बनी है, गले में आभरणस्वरूप छोटी-छोटी घण्टियाँ भी हैं। वहाँ भी देवी की मूर्तियाँ अर्धाङ्गिनी के तौर पर साथ ही स्थापित हैं। 'पोनगर' में कौठारेश्वरी स्थापित हैं, जो वहाँ बहुत समय से पूजा-अर्चा के बाद जंगली लोगों की कृपा से गायब हो गयी थीं और बहुत दिन तक गायब ही रहीं। २६ वें लेख से ज्ञात होता है कि हरिवर्मा महाराज ने ई० स० ८१७ में इन देवी की पुनः स्थापना करायी। पीछे ई० स० ९१८ में इन्द्रवर्मा ने भी इनकी स्वर्णमूर्ति बनवायी थी, जिसका ४५ वें लेख से पता चलता है। शिलालेख का उक्त श्लोक इस प्रकार है-

व्योमाम्बुराशितनुगे शकराजकाले देवीमिमां भगवतीं कलधौतदेहाम्।
एकादशेऽहनि शुचेरसितेऽर्कवारे सोऽतिष्ठिपद्भुवनमण्डलकीर्तिकाङ्क्षी॥

कुछ दिनों बाद इस देवी की मूर्ति को कम्बोडिया के लोग चुरा ले गये। इस पर जयेन्द्रवर्मा महाराज ने उसकी जगह शिलामूर्ति को स्थापित किया था, जिसका पता ४७ वें लेख से चलता है। ई० स० १०५० में परमेश्वरवर्मा ने इस देवी को रत्नजटित किरीट, चाँदी की प्रभावली और मोरपंख की तरह छत्री आदि सुवर्णाभरण समर्पित किये, जिनका विवरण ५५ वें लेख में है। इस लेख के पहले श्लोक में देवी का और दूसरे में महाराज का वर्णन बहुत सुन्दर, परंतु कूट भाषा और भावों के 1 द्वारा व्यक्त किया गया है। वह इस प्रकार है-

भूता भूतेशभूता भुवि भवविभवोद्भावभावात्मभावा
भावाभावस्वभावा भवभवकभवा भावभावैकभावा।
भावाभावाग्रशक्तिः शशिमुकुटतनोरर्धकाया सुकाया।
काये कायेशकाया भगवति नमतो नो जयेव स्वसिद्धया॥

सारासारविवेचनस्फुटमना मान्यो मनोनन्दनः
पापापापभयप्रियाप्रियकरः कीर्त्यर्जनैकोद्यमः।
लोकालोकिकलौ कलौ सति सतस्त्रातुं भवद्भाविनो
भावोद्भावसुभावसद्गुणगणैर्धर्मं तनोत्येव यः॥

इन श्लोकों को पढ़कर यह कहना पड़ता है कि चम्पादेश में संस्कृत के विद्वानों की कमी न थी और राजाओं के में दरबार भी उनके सम्मान के लिये तैयार थे, नहीं तो संस्कृत- लेखों की इतनी भरमार कैसे होती ? और भी कितने ही

राजाओं के इस देवी के भक्त होने की बात ९७, ९८, ९९, १०५ - १०९वें लेखों से प्रकट होती है।

'डांगफुक' में एक अर्धनारीश्वर - मूर्ति है और कुछ 5 प्रदेशों में विघ्नेश्वर और षण्मुख स्वामी के विग्रह भी पाये गये हैं। इसके अतिरिक्त गणपति-मूर्तियाँ भी बहुत हैं, जिनमें से अधिकांश शिवमन्दिरों में ही स्थापित हैं। २६वें लेख से। 'पोनगर' में गणपति के प्रत्येक मन्दिर के ई० स० ८१७में बनाये जाने की बात मालूम होती है और वहाँ की कुछ गणपति-मूर्तियोंपर शिवलिङ्ग धारण किया हुआ पाया जाता है, जैसे अपने देश में व्यासकाशी के व्यासगुरु घण्टाकर्ण शिवाचार्य के हाथ में, काशी की 'विशालाक्षी' देवी तथा पण्ढरपुर के 'विठोबा' के मस्तक में, बार्शी के 'भगवन्त' के ललाटभाग में एवं अनन्तशयन के 'अनन्तपद्मनाभ' मूर्ति के हाथ में देखा जाता है। अब वहाँ की शिवभक्ति का नमूना परखने के लिये कुछ उद्धरण देते हैं। २१वें लेख में-

जयति जितमनोजो ब्रह्मविष्ण्वादिदेवप्रणतपदयुगाब्जो निष्कलोऽप्यष्टमूर्तिः ।
त्रिभुवनहितहेतुः सर्वसङ्कल्पकारी परपुरुष इह श्रीशानदेवोऽयमाद्यः ॥

४२वें लेख में—

यो भस्मराश्यां बहुसञ्चयायां दिव्यः सुखासीन उरुप्रभावः ।
देदीप्यते सूर्य इवांशुमालाप्रद्योतितः खे विगताम्बुदेशे ॥

उन्तालीसवें लेखमें तो ब्रह्मा, विष्णु के महालिङ्गस्वरूपी शिवजी के आद्यन्त को न देख सकने पर उनका गर्व भङ्ग होने की बात विस्तार से प्रतिपादित है, जो महिम्नः स्तोत्र के 'तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि' वाले श्लोक में है।

पैंतीसवें लेखमें शा० सं० ८२० की ज्येष्ठ कृष्ण पञ्चमी में स्थापित की गयी 'शिवलिङ्गेश्वर' मूर्ति के विषयमें विवरण करते हुए लिङ्ग के संस्थापक के लिये 'शिवाचार्य' पद का प्रयोग किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय वीरशैवों के गुरु 'शिवाचार्य' लोग सभी देशों में भ्रमण करते हुए शिवभक्ति का डंका बजवाते थे। वह श्लोक इस प्रकार है-

शैवक्रियावित्सुकृतप्रसक्तो देवार्चनाज्ञानसमर्थबुद्धिः।
पित्रोर्गुणान् भारतरान् स चित्ते सञ्चिन्त्य पुण्यं स करोतु कीर्त्यै ॥

शाके खद्व्यष्टभिर्युक्ते पञ्चाहे शुच्यपाण्डरे ।
स्थापितः शिवलिङ्गेशः शिवाचार्येण धीमता ॥

पैंतालीसवें लेख के-

मीमांसषट्तर्कजिनेन्द्रसूर्मिः सकाशिकाव्याकरणोदकौधः
आख्यानशैवोत्तरकल्पमीनः पटिष्ठ एतेष्विति सत्कवीनाम् ॥

इस श्लोक से इन्द्रवर्मा की अद्भुत विद्वत्ता की बात जानकर यह आश्चर्य होता है कि भारत से इतनी दूर ये संस्कृत के महापण्डित कैसे होते थे। कुछ भी हो, अनाम-देश की अच्छी तरह समालोचना करने वाले इस लिङ्ग-पूजा की व्यापकता को जानकर गर्व या आनन्द से अवश्य मस्तक ऊँचा करेंगे।

फ्रेंचों के अधीनस्थ 'कम्बोडिया' में भी शिवलिङ्ग विराजमान है। इस देश का प्राचीन नाम 'कम्बोज' मालूम पड़ता है। पहले इस देश के राजा राजेन्द्रवर्माने शा० सं० ८६६में 'अंकोरतोम' नामक यशोधरपुरी के तालाब के बीच शिवलिङ्ग को स्थापित किया था, जो वहीं के 'सियांराप' जिलेके 'बातचोम' स्थान के खंभों के ऊपर खुदे हुए लेख से मालूम होता है।

इतिहासप्रसिद्ध 'जावा' और 'सुमात्रा' द्वीपों में, जिनका प्राचीन नाम क्रमशः 'यव' और 'सुवर्णद्वीप' था, अनेक शिवलिङ्ग हैं। हॉलैंडके लैडन् युनिवर्सिटी के प्रोफेसर डॉ० एन० जे० क्रोम् नामक महोदय ने डच भाषाकी एक सचित्र पुस्तक प्रकाशित की है, जिसका नाम है 'यवद्वीप की प्राचीन शिल्पकला' । इस पुस्तक के शिव मन्दिर के चित्रों को देखकर हृदय आनन्दसे खिल उठता है। इस विषय के कितने ही विशेषज्ञों का कहना है कि सुप्रसिद्ध अगस्त्य महर्षि के द्वारा ही इन द्वीपों में शिवभक्ति का खूब प्रचार हुआ, क्योंकि इन्होंने श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्यसे शिवदीक्षा ली थी। वहाँ अगस्त्य की कई मूर्तियाँ मिली हैं, जो रुद्राक्ष आदि शिवचिह्नों से विभूषित हैं। अगस्त्यकी मूर्ति को वहाँ के लोग 'शिवगुरु' के नाम से पुकारते हैं। वहाँ मुसलमानों के आक्रमण होने पर भी शिवभक्ति की कमी नहीं हुई है। सभी लोग असाधारण भक्ति से लिङ्गपूजा करते हैं । जावाद्वीप के बीच 'प्रांबानान' नगर के समीप 'लाराजग्रांग' नामक शिवमन्दिर है । वहाँ इसकी बड़ी प्रसिद्धि है। इस मन्दिर में मनुष्याकार महादेवजी । खड़े हैं। इनकी लंबाई दस फुट है। मूर्ति के सामने नन्दी, दाहिनी ओर ब्रह्मा और बायीं ओर विष्णु की मूर्ति स्थापित है। शिवमूर्ति छिन्न-भिन्न कर दी गयी थी, परंतु डच सरकार ने उसके अवयवों को ठीक-ठीक मिलाकर रखा है। इसी मन्दिर में 'शिवगुरु', 'गणपति', 'दुर्गा' आदि की मूर्तियाँ भी हैं । यह मन्दिर दुमंजिला है। ऊपरके भाग में ही मूर्तियाँ स्थापित हैं । इतिहासज्ञों का मत है कि यह मन्दिर ई० स० ९०५ से पूर्व का नहीं है। 'पनतरन्' नामक ग्राम में भी एक भारी शिवालय है। इसी प्रकार उस देश के अनेक भागों में बहुत-से शिवालय हैं, जो आजकल जीर्णावस्था में पड़े हैं। भूमण्डल के सभी प्रान्तों में शिवालयों को देखकर यह कहने में किसी को संकोच न होगा कि शिवलिङ्ग-पूजा महाव्यापक और अत्यन्त प्राचीन है।